## युद्ध के रूपक में कोरोना से बर्ताव

कोरोना से कैसा बर्ताव करें, यह एक समस्या है।

यह विडंबना है कि कोरोना से आहत राज्य योद्धा-भाव के साथ उससे जूझ रहा है और नागरिक के भीतर भी जुझारूपन जगाने का प्रयत्न करता है। राज्य के इसी दृष्टिकोण के चलते भाषा में कोरोना-वॉरियर शब्द प्रकट हुआ है। यह शब्द अपने रूपकात्मक अर्थ के भीतर जूझारूपन और मर्दानगी के भाव को सहेजे हुए है और कोरोना के विरुद्ध राजसत्ता की कार्रवाइयॅ को गर्व-भरी खुशफ़हमी देता है। मगर यह कोरोना के आगे बेबस राज्य की खुशफ़हमी है। सचाई यह है कि राज्य की बेबसी को छिपाने के लिए कोरोना की लड़ाई को मर्दानगी के मनोविज्ञान से जोड़ा जा रहा है। कोरोना-प्रबंधन के लिए राज्य की हर पहलकदमी में मर्दानगी का तड़का लगाया जा रहा है। कोरोना को विषाणु और उसके संक्रमण को व्याधि की तरह नहीं, शत्रु की तरह देखने से राज्य का मूलतः पितृसत्तात्मक चरित्र ही पुष्ट होता है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि युद्ध और मर्दानगी के रूपक में कोरोना-प्रबंधन को समझने का प्रयत्न निरा रेटॉरिक है। सच पूछा जाए तो यह उत्पीड़ित का प्रतिरक्षात्मक संघर्ष है जिसमें सूझबूझ, विशेषज्ञता और विवेकशीलता की दरकार होती है। लेकिन एकबारगी अगर मान लिया जाये कि यह युद्ध है, तो महज़ प्रतीकॅ से नहीं लड़ा जाएगा। यह प्रकृति की वास्तविक चुनौती है, प्रतीकात्मक संघर्ष नहीं, जिसका मुक़ाबला घंटी या शंख बजा कर किया जा सके या महाभारत के युद्ध की तरह नियत मिथकीय समय में समाप्त हो जाने की भविष्यवाणी की जा सके। याद कीजिये कि पिछले मार्च में पूर्णबन्दी का औचक ऐलान करते हुए तीन सप्ताह में उसके निवारण का दावा किया गया था। तब अठारह दिनॅ में महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाने की समतुल्यता में तीन सप्ताह में कोरोना के परास्त हो जाने की भविष्यवाणी की गयी थी। लेकिन यह एक खुशफ़हमी थी। अनेक देशॅ ने कोरोना-प्रबंधन में ऐसी ही खुशफ़हमी पाल रखी थी। दुर्भाग्य से राजसत्ताओं की अदूरदर्शिता और उसके चलते महामारी को नियंत्रित कर पाने में उनकी विफलता के अनेक उदाहरण इस दौरान सामने आए। इससे उत्पन्न त्रासदियॅ के हृदय-विदारक दृश्य हमने देखे। इन दृश्यॅ में इटली और अमेरिका में अस्पतालॅ और कब्रगाहॅ में बदइंतजामी के बीच पड़ी लाशॅ से लेकर भारत में लाखॅ की सँख्या में सड़क पर अपने घर वापस जाने के लिए निकल आए भूखे-लाचार मज़दूरॅ का हुजूम भी शामिल है।

ज़ाहिर है, नागरिक के लिए कोरोना का प्रकोप ही नहीं, राज्य का बेगानापन भी अप्रत्याशित त्रासदी लेकर आया। भारत की सड़कॅ पर निकले मज़दूरॅ को ही नहीं, अमेरिका में तालाबंदी करने में शासन की हीलाहवाली और देरी को भी इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

## सोशल डिस्टेंसिंग एक हौलनाक शब्द है

कोरोना ने भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति पर पहरा बिठा दिया और मानवीय संपर्क को एक मीटर की पारस्परिक दूरी में सीमित कर दिया। हाथ मिला कर अभिवादन करना, गले लगा कर प्रेम जताना अब वर्जित है। यह परस्पर दैहिक दूरी बनाए रखने का कोरोना-कालीन उपाय था जिसे 'सामाजिक दूरी' कह दिया गया। इस शब्द के प्रयोग पर आपत्ति भी हुई लेकिन बहुत जल्द यह आधिकारिक शब्द बन गया। यह बात भुला दी गयी कि एक

अवधारणा के रूप में, और अपने निहितार्थ में भी, यह मनुष्य की सदियॅ से अर्जित सामुदायिकता और सामाजिक संसर्ग के लोकसिद्ध अभ्यास का निषेध करता है। इस वक़्त जब वैश्विक स्तर पर एकजुटता का आह्वान किया जा रहा है और सामाजिक दूरी शून्य करने की, समता और सद्भाव को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता बताई जा रही है, 'सामाजिक दूरी' शब्द एक व्यतिरेक उपस्थित करता है।

कहने को तो यह कोरोना द्वारा संभव की गयी एक नई तरह की अस्पृश्यता को तात्कालिक प्रतिरक्षात्मक उपाय के तौर पर पेश करता है, लेकिन वास्तव में यह उस जातिगत अस्पृश्यता की स्मृति जगाता है जिसे वर्ण-व्यवस्था दलितॅ के दमन के उपकरण के रूप में इस्तेमाल करती थी और जिसे संविधान ने समाप्त कर सामाजिक समरसता का रास्ता खोला था। न सिर्फ़ जाति के आधार पर बल्कि धर्म, जेंडर, आर्थिक स्थिति आदि के आधार पर सामाजिक पृथक्करण के व्यवहार की वैधता का प्रकारांतर तर्क जुटा कर यह पद वस्तुतः मध्ययुगीन वर्णाश्रमवादी सामंती मानसिकता को वैध ठहराने का रास्ता खोलता है। इसका अविचारित प्रयोग एक ओर भाषा को दूषित करता है, तो दूसरी ओर औपनिवेशिक काल की उन कटु स्मृतियॅ को कुरेदता है जिनमें नस्लीय आत्मगौरव और अहंकार में डूबे यूरोपीय गोरे महामारी के ऐसे ही दौर में नेटिव नागरिकॅ को हिकारत से दुरदुराते थे और उन्हें महामारी का वाहक कह कर लांछित करते थे। ग़ौर करें कि पृथकवास (क्वारन्टीन) में बलात अलग-थलग कर दिये गये संक्रमितॅ के लिये उनका एकांत वास्तव में सामाजिक दूरी या सामाजिक बहिष्कार के-से दारुण अनुभव में बदल चुका है।

इतना ही नहीं, अगर यह भविष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार में भी बना रहे तो अतीत की तरह दलितॅ, दीगर धर्मावलम्बियॅ, गरीबॅ के प्रति घृणा व्यक्त करने और उनके सामाजिक विलगाव को प्रकट करने का ज़रिया बन सकता है। राज्य द्वारा अपने विरुद्ध उठने वाली असहमति और प्रतिरोध की आवाज़ॅ के दमन और उन्हें सामाजिक रूप से अलग-थलग करने के लिए भी इसे इस्तेमाल किया जा सकता है।

## भ्रमजीवी समाज और न्यू नॉर्मल

इन ख़बरॅ की छाया में यह कोरोना महामारी द्वारा रचा गया एक तरह का भ्रमजीवी यानी कन्फ्यूज्ड समाज है। यहाँ झूठ को निश्चयपूर्वक आरोपित किया जाता है, जैसे यह झूठ कि कोरोना-संक्रमण तब्लीगी जमात के कारण फैला या गाँव लौटने वाले मज़दूर कानून तोड़ रहे और संक्रमण फैला रहे हैं, या कोरोना का टीका बस आने ही वाला है। यह पूर्वग्रह-ग्रस्त भ्रमजीवी समाज बेरोज़गार हुए श्रमिकॅ, कोरोना-संक्रमितॅ और ख़ास समुदाय के लोगॅ को लांछित (स्टिग्मेटाइज़) करता है। कोरोना ने इस तरह सामाजिक अलगाव को प्रोत्साहित भी किया है। संक्रमित व्यक्ति अब पास-पड़ोस में मानो अपराधी हो गया है। सामाजिक संवेदना के क्षरण की यह पराकाष्ठा है।

यह सब स्वाभाविक तौर पर हो रहा है, क्यॅकि यही न्यू नॉर्मल है। राज्यसत्ता की अतिक्रामकता, नागरिक जीवन का संकुचन, सामाजिकता का आभासी विस्तार, उपभोग-सहित तमाम मानवीय कार्यकलाप का डिजिटलीकरण, इस न्यू नॉर्मल में भयभीत होना भी शामिल है। विषाणु के रूप में भय सतह पर बैठा है। उसकी गहरी छाया मन में पसर गयी है। पूरी दुनिया एक साथ भय के सामाजीकरण के अनुभव से गुज़र रही है। चाहें तो इसे भय का वैश्वीकरण भी कहा जा सकता है। यह अभूतपूर्व है। क्या मानव-इतिहास में कभी ऐसा हुआ कि एक समय एक ही तरह के समरूप अनुभव से दुनिया में हर एक व्यक्ति गुज़र रहा हो? मानवीय सम्पर्क पर पुलिसिया पहरेदारी के बीच कोरोना का यह वैश्विक आतंक मानसिक तौर पर अवसाद या मनोदलन के अलावा और किस रूप

में फलित हो सकता था? यह अहसास कितना दारुण है कि घर से बाहर मृत्यु आँख गड़ाए बैठी है। संक्रमितअॅ की बढ़ती सँख्या के साथ मृत्यु की गुर्राहट भी तीव्र होती जान पड़ती है। पूरी दुनिया इसे सुन रही है।

तालाबंदी में खुला रहा सूचना का अहर्निश बाजार

तालाबंदी में तमाम बाज़ार बंद रहे, केवल सूचना का व्यापार बेरोकटोक और अहर्निश जारी था। पिछले दिनअॅ किये गए अनेक अध्ययनअॅ से खुलासा हुआ है कि इस दौरान पूरे विश्व में डेटा का उपभोग बेतहाशा बढ़ गया । इसे डेटा-व्यापार के क्षेत्र में गाफा (गूगल, एपल, फेसबुक और अमेजॉन) और माइक्रोसॉफ्ट, ट्वीटर-जैसी दैत्य कंपनियअॅ के बढ़ते कारोबार से समझा जा सकता है। आख़िर इस कोरोना-काल में गूगल ने रिलायंस की साझेदारी में साढ़े चार अरब डॉलर के निवेश का ऐलान यूँ ही नहीं किया है। ये कम्पनियाँ सूचना के बाज़ार पर न सिर्फ एकाधिकार और नियंत्रण रखती हैं, बल्कि अपने व्यावसायिक हितअॅ के अनुरूप सूचना को सेंसर भी करती हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि उपभोक्ता के लिए नियंत्रित सूचनाएँ पेश की जाती हैं और उन्हीं के आधार पर जनमत निर्मित होता है।

तो कोरोना-संकट में एक नया उपभोक्ता समाज प्रकट हुआ है, जिसके भीतर एक नई तरह की सामुदायिकता विकसित हुई है। इसका एक आभासी विस्तार भी है जो सोशल मीडिया द्वारा बनाए गए एक स्वच्छंद, लेकिन अक्सर विवेक के नियंत्रण से मुक्त स्पेस तक फैला हुआ है। यहीं हमारा नया पड़ोस है, आभासी पड़ोस। कोरोना ने हमारा पड़ोस भी हमसे छीन लिया है। इस पड़ोस में ही अब संवाद संभव हो पा रहा है। इसकी नई सामाजिकता में संवाद का अर्थ है, सच्ची-झूठी खबरअॅ, अफवाहअॅ, और उनके आधार पर बने निजी विचारअॅ और मनमानी अभिव्यक्तियअॅ की निरंतर बमबारी। यहाँ महामारी को लेकर ही सबसे ज़्यादा सच्ची-झूठी खबरें हैं।

दुर्दम्य विषाणु के आगे अदम्य सत्ताकांक्षा

भारतीय समाज में इधर आभासी सामुदायिकता के उभार के समानांतर एक और नयी तरह की सामुदायिकता का उभार हुआ है जिसमें तालाबंदी के समय पैदा हुआ महामारी का भय एकाएक उड़नछू हो गया है। यह तालाबंदी खोलने के बाद की सामुदायिकता है, जिसके चलते हफ़्तअॅ से घरअॅ में क़ैद लोग सहसा बाज़ार में पहुँच कर राहत और मुक्ति का अनुभव कर रहे थे। बाज़ार में अब भीड़ थी। यह भीड़ बिहार की चुनावी रैलियअॅ में सत्ताकांक्षी राजनेताओं के इशारे पर बिना-संकोच इकट्ठा हुई थी। तालाबंदी खुलने के बाद, क्या विडंबना है कि सामुदायिकता की परिणति आत्मसंयम में नहीं, भीड़ में हुई है। इस चुनाव की तुलना हाल ही में सम्पन्न न्यूज़ीलैंड के संसदीय चुनाव से करें, जिसके बाद कोरोना-संक्रमितअॅ की सँख्या का वक्र प्रायः स्थिर रहा। न्यूज़ीलैंड की सरकार चुनने के लिए भारत की तरह भीड़ नहीं मची। पिछले आठ महीनअॅ में वहाँ की युवा प्रधानमंत्री जेसिंडा अर्डर्न ने कोरोना-प्रबंधन में कुशल नेतृत्व का प्रदर्शन किया। उन्हअॅने अपने देश की जनता के 'जीवन' और 'आजीविका' दोनअॅ की चिंता करते हुए अत्यंत कुशलता से उसे नियंत्रित किया। वहाँ चुनाव में भीड़ नहीं, एक संयमित और अनुशासित नागरिक समाज था। दुर्भाग्य से भारत में कोरोना-प्रबंधन में जीवन और आजीविका दोनअॅ की अवहेलना हुई। यह भी दुर्भाग्य है कि हमारी सामुदायिकता कोरोना के ज़रूरी सबक़ के बावजूद एक अनियंत्रित भीड़ बन कर रह गयी है।